पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, कलश २७१,
ता. ०१-०८-१९९०, प्रवचन नंबर P ५१९

अपना विषय चलता है, समयसार का सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के आखिर का परिशिष्ठ। उसके अंदर अमृतचंद्राचार्य भगवान का एक श्लोक है, २७१ नंबर का। उसके ऊपर अपने परम उपकारी पूज्य गुरुदेव ने व्याख्यान दिया है। उस व्याख्यान के ऊपर स्पष्टीकरण चलता है। उस व्याख्यान में क्या माल भरा है, गुरुदेव ने क्या कहा, वो समझने की कोशिश करने से आत्मलाभ होता है। समझ में नहीं आवे तो समझने की कोशिश करना चाहिए। यह निश्चय की बात है, ऐसा कहकर उड़ाना (छोड़ना) नहीं चाहिए। निश्चय की बात यानि सत्य बात है, अपनी बात है, वो सुनने जैसी है। अनंतकाल से व्यवहार की बात सुनी, शुद्धनय का विषय तो बहुत विरल, कहीं-कहीं ही मिलता है और शुद्धनय के विषय का उपदेश मिलने से शुद्धात्मा का निर्णय हो जाता है। निर्णय होने के बाद आत्मा का स्वानुभव होता है।

तो पहले पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भाग किया है ना, अपने कोर्स (में)। तो पहले तीन महीने का कोर्स क्या है? कि आत्मा कर्ता नहीं है मगर अकर्ता, ऐसा ज्ञायक-ज्ञाता है। बहुत थोड़े मिनिट के लिए वो पूर्वार्द्ध की बात चलती है। क्योंकि कर्ताबुद्धि का शल्य जिसको अन्दर में घुस गया है, निगोद का संस्कार है वो, आजकल का संस्कार नहीं है। पर के उपदेश से वो कर्ताबुद्धि नहीं आयी। बिना उपदेश से अनादिकाल का अज्ञानी जीव, स्व-पर की एकता करके, मैं पर का कर्ता, राग का कर्ता, ऐसा मानता है। वो मान्यता अनंत दुःख का कारण है।

तो एक समयसार के आधार से एक बात मैं आपको सबको बताता हूँ। समयसार शास्त्र की ३२० गाथा में आत्मा अकारक-अवेदक कहा है। बंध-मोक्ष का कर्ता नहीं है। बंध-मोक्ष का कर्ता कहा जाता है। भावबंध और भावमोक्ष की बात है, हों! द्रव्यकर्म का बंध और द्रव्यकर्म की बात नहीं है। वो तो प्रमाण से बाहर गया। मगर प्रमाण के अंदर आवे तो स्वभाव को भूलकर आत्मा, रागादि का मैं कर्ता हूँ, ऐसा उसका प्रतिभास उसको हो गया है। कर्ता होता नहीं है, कर्ता का प्रतिभास हो गया है, (है तो अकर्ता), उसका नाम अज्ञान है, और भेदज्ञान के सद्भाव में आत्मा संवर-निर्जरा-मोक्ष का कर्ता है, वो भी व्यवहार से है। भावबंध का कर्ता भी व्यवहारनय से और भावमोक्ष का कर्ता भी व्यवहारनय से कहा है। निश्चयनय से तो भगवान आत्मा अकारक-अवेदक है, ऐसी बात, ३२० गाथा में आचार्य भगवान ने कही, लिखी (है)। उसके बाद ३२१, ३२२ और ३२३ गाथा, तीन गाथा एक साथ हैं, उसमें क्या माल भरा है? जो कर्ता मानता है श्रमण, श्रमण मुनि, द्रव्यलिंगी मुनि, कर्ता मानता है, तो उसका मोक्ष नहीं होता है। ऐसे आचार्य भगवान फ़रमाते हैं, मैं टीका पढ़ता हूँ।

टीका:- **जो आत्माको कर्ता ही देखते-मानते हैं**, ...जानते हैं और मानते भी हैं। कि यह आत्मा तो कर्ता ही है। **वे लोकोत्तर हों तो भी लौकिकताको अतिक्रमण नहीं करते**; लोकोत्तर यानि मुनिदीक्षा

ली, २८ मूलगुण का निरतिचारपने पालन करते हैं, ५ महाव्रत का पालन करते हैं, दोष आवे तो प्रायश्चित भी लेते हैं - ऐसी शुभभाव की क्रिया कर्ताबुद्धि से करते हैं। तो आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि वे **लोकोत्तर हों तो भी** यानि जिनदीक्षा लेने के बाद भी **लौकिकताको** यानि लौकिकमत के अंदर **अतिक्रमण नहीं करते**; दो का मत एक होता है, कर्ताबुद्धि। वहाँ आएगा इधर।

क्योंकि, **लौकिक जनोंके मत में**... अन्यमति, जैनमत (के) सिवाय अन्यमत, वो लौकिकमत है। तो **लौकिक जनोंके मत में परमात्मा विष्णु देव**, **नारकादि कार्य करता है**, सब कार्य जो करता है वो ईश्वर करता है। उसकी इच्छा से कार्य होता है। वो पेड़ से पत्ता भी हिलता नहीं, ईश्वर की इच्छा के बिना। ईश्वरवादी, ईश्वर के कर्तावादी। ईश्वर के कर्तावादी का इससे मोक्ष नहीं होता है। क्या कहा? (जो) ईश्वर को कर्ता मानता है, उसको मोक्ष नहीं होता है। **और उन (-लोकोत्तर भी मुनियों) के मतमें** श्रमण लिया, श्रमण। आहाहा! उसके पेटा में सब आ गया सारा समाज। **मतमें अपना आत्मा उन कार्यको कर्ता है**-लौकिकमत में ईश्वर कर्ता है (और) लोकोत्तर मतवाला कहता है कि मैं कर्ता हूँ। राग का मैं कर्ता हूँ, कर्म का मैं कर्ता हूँ, शरीर मैं हिलाता हूँ, सुखी-दुखी कर सकता हूँ, सबको। कर्ता का विस्तार बहुत है मगर कर्ता का शोर्ट अज्ञान है। कर्ताबुद्धि का नाम अज्ञान है। अज्ञान का सब फैलाव है, विस्तार सब, जितना करो उतना। **(-लोकोत्तर भी मुनियों) के मतमें अपना आत्मा उन कार्यको कर्ता है-इसप्रकार (दोनोंमें) अपसिद्धांतकी समानता है**। झूठा सिद्धांत दो का। अपसिद्धांत का नीचे (फुटनोट में) लिखा है **मिथ्या अर्थात् भूलभरा सिद्धांत**। भूलवाला सिद्धान्त है, **अपसिद्धांत की समानता है। इसलिए आत्माके नित्य कर्तृत्वकी भूल उनकी मान्यताके कारण**, आहाहा! आत्मा कर्ता ही है, उसमें शंका कहाँ है? शंका ही नहीं है, मैं कर्ता ही हूँ। आहाहा! जो राग-द्वेष का कर्ता न हो, तो ये संसार नहीं होगा, इसलिए मैं कर्ता हूँ। उसको छोड़ो तो संवर-निर्जरा-मोक्ष का तो मैं कर्ता ही हूँ। आहाहा! ऐसे पर का, परभाव, ये सब परद्रव्य हैं। नवतत्व का कर्ता मानता है, वो परद्रव्य है। वो **मान्यताके कारण**, **लौकिक जनोंकी भाँति**, ईश्वर के कर्तावादी की भाँति **लोकोत्तर पुरुषों (मुनियों) का भी मोक्ष नहीं होता। नहीं होता**। यानि कर्ताबुद्धि जहाँ तक जीव के अंदर रहती है, है ज्ञाता, ज्ञायक होने से केवल ज्ञाता है। मानता है कर्ता, उसका मोक्ष होनेवाला नहीं है। समयसार में लिखा है, इसलिए अपने को कर्ताबुद्धि (जो) अपना हथियार (है, उसको छोड़) टाल देना चाहिए। आगम सामने आवे ना, तो मोक्षार्थी, आत्मार्थी भी अपनी मान्यता को छोड़ देता है। आहाहा! मान्यता को छोड़ता है, मैं तो ज्ञाता हूँ, कर्ता नहीं हूँ। आहाहा! ऐसे मूल गाथा तीन हैं, उसकी मैंने टीका पढ़ी। घर पर पढ़ लेना सब जाकर। ३२१, ३२२ और ३२३ तीन गाथा है। आहाहा!

अभी एक गुरुदेव का आधार देता हूँ। अनुभवी का, वो भी अनुभवी संत, भावलिंगी। वो भी गुरुदेव भी अनुभवी पुरुष हैं। एक आत्मधर्म निकला है आत्मधर्म, बहुत टाइम पहले का है। ४८७ नंबर का आत्मधर्म है। ४८७, अंक -११, वर्ष ४० में, मई १९८४। १९८४ की साल का एक अंक है। गुरुदेव का अंक है, आत्मधर्म का। देखो! उसमें चार नंबर का पॉइंट है। उसमें १५४, १५६ का पॉइंट है लगभग। आहाहा! इसमें से चार नंबर का पॉइंट है। मैं पढता हूँ।

सिद्ध है वो जाननेवाला-देखनेवाला हैं। सिद्ध परमात्मा हैं ना, अनंतकाल (से) सिद्ध (परमात्मा) हो गए, वो परमात्मा सिद्ध हैं ना, वो जाननेवाले-देखनेवाले हैं। ऐसे तू भी जाननेवाला-देखनेवाला ही है।

हिंदी कर लेना। जैसे सिद्ध ज्ञाता-द्रष्टा, ऐसे तू भी ज्ञाता-द्रष्टा ही है। 'ही' लगाया है, 'भी' नहीं। आहाहा! 'भी' हो तो अनेकांत होगा। (तो कहें) कि नहीं। 'ही' में एकांत होता है और सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत होता है। मैं जाननेवाला हूँ और करनेवाला नहीं हूँ। इसका नाम अनेकांत। कथंचित् जाननेवाला और कथंचित् करनेवाला, इसका नाम अनेकांत नहीं है। आहाहा! क्या कहा? **वेसे तू भी जाननेवाला-देखनेवाला है। अधूरे पूरे का प्रश्न नहीं है।** आहाहा! तो मैं अल्पज्ञ हूँ और वो पूर्णपरमात्मा हैं, वो (बात) आगे मत कर। वो भी जाननेवाले-देखनेवाले (और) तू भी जाननेवाला-देखनेवाला। **जाननेवाले-देखनेवाले से ज़रा भी हटा**, ज़रा हो, थोड़ा, कर्तृत्व में आया। **ज़रा हटा यानि कर्तृत्व में गया, अर्थात् सिद्ध से जुदा पड़ा** आहाहा! सिद्ध से जुदा हो गया। **एक क्षण सिद्ध से जुदा पड़े, वो मिथ्यादृष्टि है।** मैं शुभराग का कर्ता हूँ, ऐसा अभिप्राय उसकी अंतर्बुद्धि में पड़ा है, मिथ्यात्व है। आहाहा! शुभराग की बात। पाप का परिणाम का मैं कर्ता हूँ, वो तो मिथ्याद्रष्टि है ही, मगर पुण्य परिणाम का मैं कर्ता हूँ, आहाहा! कर्ताबुद्धि, श्रद्धा का दोष, वो मिथ्यादृष्टि है। वो बात यथार्थ बात है। यानि ये पहले तीन महीने का कोर्स ज़रा बहुत गहराई से समझने जैसा है और तीन महीने के कोर्स में जो, उतीर्ण हो गया, बाद में एंट्री मिलती है उसमें (दूसरे में), एंट्री होती है, अर्थात् दाखिला होता है। आहाहा! जो उसमें फेल (नापास) है कि क्या मैं राग को नहीं कर्ता हूँ? ठहर! ठहर! फ़ैल है। तेरे लिए इस विषय में प्रवेश करना मुश्किल है। आहाहा!

ये भाईसाहब, भारिल्लजी साहब भी सबकी परीक्षा लेते हैं और सब (को) चुन-चुनकर दाखिल करते हैं। समझे! ऐसे-ऐसे सबको अंदर भर्ती नहीं करते हैं। परीक्षा लेते हैं सब, क्या परीक्षा? इंटरव्यू। इंटरव्यू लेते हैं, डाक्टर साहब! बाद में भर्ती होती है इधर।

ऐसे सर्वज्ञभगवान के मत में आत्मा, ज्ञायक, ज्ञाता, जाननेवाला-देखनेवाला होने पर भी, दूसरे के उपदेश के बिना, कर्म के उदय के बिना (उसने) अपने-आप अनादिकाल से (स्वयं को) कर्ता मान रखा है। वो कर्ताबुद्धि संसार का बीज है, मिथ्यात्व है। तू तो ज्ञाता है ना? कैसा ज्ञाता? कि जैसे सिद्ध भगवान जाननेवाले-देखनवाले, ऐसे ही तू जाननेवाला-देखनेवाला है। तेरे में जानने-देखने (का) और उसमें, फेरफार है नहीं। वो (सिद्ध भगवान) भी कर्ता नहीं है और तू भी कर्ता नहीं है। अभी (उसका) तो कर्ता नहीं है, तो पर का ज्ञाता, बंध-मोक्ष का ज्ञाता तो हूँ (ना) मैं? वो चलती है, अभी बात। ये बंध-मोक्ष का ज्ञाता कहना, वो भी व्यवहार है। आहाहा! निश्चय से तो, वो ज्ञायक का ही ज्ञाता है। अनुभव करने के लिए ये प्रक्रिया है। कर्ताबुद्धिवालों को तो वो बात इतनी खटकती है। आहाहा!

सचमुच **ज्ञानाकार ही है; ज्ञेयाकार है ही नहीं। समझ में आया कुछ? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि वह ज्ञान की पर्याय और मेरे द्रव्य-गुण (द्रव्य-गुण-पर्याय) तीनों होकर मैं ज्ञेय हूँ, ज्ञान हूँ, ज्ञाता हूँ, और ज्ञेय यह लोकालोक-ऐसा किसने कहा?** वो बात निकली थी। आहाहा! क्या कहा? ज्ञान तो इधर रखा है और ज्ञाता भी मैं हूँ और ज्ञेय कौन? एक धर्म को उड़ा दिया। प्रमेयत्व गुण का नाश कर दिया उसने। प्रमेयत्वगुण को उड़ा दिया, अपनी बुद्धि में। उड़ता तो नहीं है, पर मिथ्याबुद्धि में होने पर भी वो दिखाई नहीं देता है। अपना जो ज्ञेय है, वो दिखाई नहीं देता है। वो (पर) ज्ञेय ही दिखाई देता है।

वसंतभाई! यह काम हो जावे, ऐसी (बात) है। अभी यह सब उसमें कुछ है नहीं, बात में माल। आहाहा! आपका विचार आया, नहीं हैं पत्नी-बच्चे नहीं कुछ लेना-देना...अब इसमें लग जाओ ना। क्या

उसमें कुछ नहीं है। आहाहा! पराश्रित (क्रिया) का सब विकल्प जाल है। यानि अनुभव तो होता होगा ना थोड़ा-थोड़ा? आहाहा! इसमें वैराग्य आ जाना चाहिए। आहाहा! अपना (काम) कर लेना। आहाहा! समाज, समाज। क्या समाज? कौन समाज? समाज, हमारे अनंत गुण हमारे समाज हैं। आहाहा! समाज के लिए हम करते हैं, समाज के लिए (ऐसा) करते हैं, वो आत्मार्थी नहीं है। हमारा समाज हमारे पास है। आहाहा! अनन्त गुण हैं मेरे, ये समाज है। आहाहा! समाज का नाम लेकर, ओहोहो! स्वयं को ठगता है। आत्मा, आत्मा को ठगता है। आहाहा! समाज के लिए करता है। अच्छा! तो तेरा काम कब करेगा तू? समाज के लिए तेरा जन्म है कि भव के अंत के लिए यह जन्म है? तो (फिर) प्रभावना रुक जाएगी। (अरे! कहते हैं) कि निश्चय प्रभावना हो जाएगी। निश्चय प्रभावना होगी, तो व्यवहार प्रभावना का विकल्प आएगा। उसके काल-क्रम में होगा। बस! पंडितजी ने स्वीकार किया। सही बात है ना? आहाहा!

क्या कहा? **ज्ञाता हूँ, और ज्ञेय।** ज्ञान को इधर रखा। ज्ञान मेरे पास है और ज्ञाता भी मैं हूँ। मैं आत्मा हूँ ना? ज्ञाताधर्म और ज्ञानधर्म, दो को इधर रखा। अभी ज्ञेय? **और ज्ञेय यह लोकालोक**- ज्ञेय लोकालोक, मैं ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय यह लोकालोक हो गया। क्या हो गया? मिथ्यात्व हो गया, अज्ञान हो गया। आहाहा! प्रमेयत्वगुण को उड़ा दिया। ज्ञेयधर्म को उड़ा दिया। तो उपयोग जहाँ ज्ञेय को स्थापता है, वहीं जायेगा। अपने ज्ञेयधर्म को, अपने प्रमेयत्वगुण को उड़ा दिया। आहाहा! उसमें ज्ञेय-प्रमेयत्व गुण तो है। नहीं है, ऐसा नहीं है। मगर वो ज्ञेयधर्म अपने से भिन्न है। अपना ज्ञेय अपने से अभिन्न है। अपना प्रमेयत्वगुण अपने से अभिन्न है। ज्ञाता मैं और ज्ञेय लोकालोक, ऐसा किसने कहा?

गुरुदेव फ़रमाते हैं कि यह बात किसने कही है कि आत्मा ज्ञाता और लोकालोक ज्ञेय, यह बात आई कहाँ से? आहाहा! यह बात व्यवहार में से आई और व्यवहार के पक्ष में से आई अर्थात् अज्ञान से आई। धीरे-धीरे। आहाहा! धीरे-धीरे कहना पड़े। क्या करें? आहाहा! एकांत का दोष लगा देते हैं। कोई समझे ही नहीं। आहाहा! क्या कहा? ये बड़ी भूल है, छोटी भूल नहीं है।

मैं ज्ञाता और लोकालोक मेरा ज्ञेय। आहाहा! ऐसा व्यवहार तो है ना? अच्छा! जो व्यवहार है, तो निश्चय क्या है? वो मालूम नहीं है। मैं ज्ञाता और लोकालोक ज्ञेय, ऐसा व्यवहार तो है ना? तो मैं पूछता हूँ कि निश्चय क्या है, मालूम है? तो वो मालूम नहीं है। आहाहा! तो गया दुनियाँ में से। **यह लोकालोक-ऐसा किसने कहा?** ऐसा, वस्तु का स्वरुप तो ऐसा (है ही नहीं)। मैं ही ज्ञाता और मैं ही ज्ञेय, ऐसा तो वस्तु का स्वरूप है। मगर मैं ज्ञाता और ये ज्ञेय (लोकालोक), ऐसा तो वस्तु का स्वरुप नहीं है। ज्ञान से ज्ञेय को जुदा माना, तो अनुभूति नहीं होती है। ज्ञान भी आत्मा और ज्ञेय भी आत्मा, तो अनुभव हो जाता है। आहाहा! यह अनुभव के लिए बात है। अनुभूति से धर्म की शुरुआत होती है। ऐसा आता है ना? अनुभव मारग मोक्षका अनुभव मोक्ष स्वरूप.....

अनुभव की महिमा (दोहा)

अनुभव चिंतामनि रतन, अनुभव है रसकूप ।
अनुभव मारग मोखकौ, अनुभव मोख स्वरूप ॥

अनुभव से शुरुआत होती है। प्रतीति अनुभव से होती है और पूर्णता भी अनुभव से होती है। बीच

में कोई क्रिया है कि नहीं? दो क्रिया होनी चाहिए। दो क्रिया होती नहीं। मोक्षमार्ग एक प्रकार का है, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार का है। निरूपण दो प्रकार का है, मगर मोक्षमार्ग दो प्रकार का नहीं है। ऐसा लिखा है, पंडित जी ने साफ़ लिखा है। आहाहा!

ज्ञाता हूँ, और ज्ञेय यह लोकालोक-ऐसा किसने कहा? परमार्थ से ऐसा है नहीं; परमार्थ से ऐसा है नहीं और व्यवहारनय कहता है; ये तो झूठी बात लिखी है कि आत्मा लोकालोक को जानता है, यह तो असद्भूत व्यवहार है, शास्त्रीय भाषा। शास्त्रीय भाषा का नाम असद्भूत व्यवहार। असद्भूत व्यवहार कहें, तहाँ तक तो ठीक। मगर झूठा व्यवहार, ऐसा गुरुदेव बोलेंगे हों! गुरुदेव की वाणी है, अभी आएगा वो। असद्भूत यानि झूठा। अ+सद्+भूत यानि ऐसा है नहीं, झूठा। असद्भूत, सद्भूत और निश्चय, तीन प्रकार है। पर को जानना (यानि) प्रमाण से बाहर (गया)। पंचाध्यायीकर्ता ने तो नयाभास में डाल दिया उसको। पंडित जी! अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल–भाव के बाहर है, वो तो नयाभास में डाल दिया; तो भी शास्त्रकार ने असद्भूत व्यवहार में रखा, मगर झूठा व्यवहार है। सच्चा व्यवहार अपने ज्ञान की पर्याय जानने में आती है, गुण जानने में आते हैं, वो सच्चा व्यवहार है और अभेद जानने में आता है, वो निश्चय है।

परमार्थ से ऐसा है नहीं; फिरभी **ऐसा कहना वह व्यवहार है।** लोकालोक को जानता है, पर को जनता है आत्मा, वो व्यवहारनय का कथन है। व्यवहारनय का कथन यानि असत्यार्थ कथन, श्रद्धा करने योग्य नहीं है। श्रद्धा करने के काबिल नहीं है। आहाहा! व्यवहारनय का कथन है। नहीं है, ऐसा नहीं। मगर निषेध करने जैसी चीज़ है।

व्यवहारनय है, व्यवहारनय का विषय भी है। नहीं है, ऐसा नहीं है। व्यवहारनय को उड़ाना नहीं है। व्यवहारनय के पक्ष को उड़ाना है, तब अनुभूति होती है, तब व्यवहार प्रगट हो जाता है। व्यवहार का पक्ष जायेगा, तब व्यवहार प्रगट होगा। व्यवहार का पक्ष कब जायेगा? कि निश्चयनय के द्वारा निषेध करेगा तब, तब अनुभव होगा। अनुभव होने के बाद निश्चयपूर्वक व्यवहार होगा। जाना हुआ प्रयोजनवान है, राग। ये भी किसी-किसी को किसी वक्त। आहाहा! निर्विकल्पध्यान में नहीं, आज्ञानी को नहीं, केवलज्ञानी को नहीं, निर्विकल्पध्यानी को नहीं। सविकल्पज्ञानी को व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा!

वो एक भिंड के अन्दर एक संवाद बनाया था। युगल जी ने देखा है वहाँ साथ में, वहाँ था संवाद। उसमें सब आ गया। तात्विक, तात्विक-संवाद है। आहाहा! मोहराजा और जीवराजा का संवाद। एक मोहराजा बना था, अहमदाबादवाला। क्या नाम? रोमेश। रोमेशभाई बने थे मोहराजा। आबेहूब (पूरी) बात करें, आबेहूब। और जीवराजा बना था, वो डॉक्टर साहब, भिंडवाला। इधर आया है। आहाहा! है कि नहीं? गया? हाँ! है, बैठा है। उसकी विडिओ है, (वीडियो) केसेट, देखने जैसी है। अकेली तात्विक हों! दूसरी कुछ बिल्कुल गड़बड़ नहीं। अकेली तात्विक। प्रश्न के ऊपर प्रश्न। मोहराजा प्रश्न करता है, जीवराजा जवाब देता है कि तेरे गुरु ने कहा है ना, कि व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। तेरे गुरु ने कहा है। (तो कहे) कि हाँ! गुरु ने कहा है मगर किसी-किसी को कोई वक्त जाना हुआ प्रयोजनवान है। अज्ञानी को नहीं, केवली को नहीं, साधक निर्विकल्पध्यान में होता है, तब नहीं, साधक सविकल्पदशा में आता है, तो व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। बहुत अंदर बहुत माल भरा है। बहुत माल भरा है। बीस-पच्चीस

मिनिट की वीडिओ कैसेट है। आहाहा! एक डॉक्टर है, अमिता डॉक्टर। बहिन है, मुंबई (में) रहती है। अमिता! उसने यह संवाद बनाकर भेजा, रात को। मोहराजा और जीवराजा का संवाद। उसके ऊपर से ये भिंड में, भिंड में बनाव बना। आहाहा! भिंड के बैठे हैं, सामने।

ऐसा किसने कहा? वो व्यवहार है। पर को जानना कहना व्यवहार है, व्यवहारनय से कहा जाता है। **आहाहा! धर्मी के अन्तर की खुमारी तो देखो!** धर्मी की अंतर की खुमारी तो देखो। ये ज्ञाता और लोकालोक ज्ञेय! किसने कहा? ऐसा तो है नहीं। आहाहा! खुमारी तो देखो! आहाहा! खुमारी की बात है। **कहते हैं- जगत में मैं एक ही हूँ**, आहाहा! धर्मदास क्षुलक ने लिखा, एक ही हूँ। सप्तम द्रव्य हो गया। छहद्रव्य (की) मेरे में नास्ति (है)। हो! छहद्रव्य हो तो हो। कौन ना बोलता है? उसमें है। मेरे में कहाँ है? आहाहा! **जगत में दूसरी चीज़ें हों तो हों**, गुरुदेव ने फ़रमाया हो तो हो। आहाहा! अन्यमती कहते हैं, ऐसा नहीं है। हाँ! छहद्रव्य है, उसका द्रव्य-गुण-पर्याय है। आठ कर्म है, इसकी १४८ कर्म की प्रकृति है। नहीं है, ऐसा नहीं है।..... अभाव नहीं है। मगर लक्ष्य करने जैसी चीज़ नहीं है इसलिए वो होने पर भी, नहीं है। हमारा कार्य सिद्ध होता नहीं, उसके लक्ष्य से। हमारा कार्य तो सिद्ध होता है, स्वलक्ष्य से। तो मैं ही हूँ। आहाहा! मुझको मैं ही दिखाई देता हूँ।

भाईसाहब ने कहा था, मुझको मुझ दिखाता है। आत्मा को आत्मा जानने में आता है, इसलिए ज्ञाता है, आत्मा का नाम। स्वयं, स्वयं को जानता है इसलिए आत्मा का नाम ज्ञाता है। आहाहा! क्या कहा? **जगत में दूसरी चीज़ें हों तो हों, परमार्थ से उनके साथ मुझे जानने तक का भी संबंध है नहीं।** वो व्यवहार ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध का निषेध करके, अंदर निश्चय में चला जाता है। अंदर में जाने की बात है। बाहर में बहुत घूमा, अनंतकाल गया। जो थकावट लगी हो, तो तीन महीने के कोर्स में पास हो जा कि मैं अकर्ता हूँ, राग का कर्ता नहीं हूँ। आहाहा! राग का कर्ता नहीं हूँ (वो तो) क्या (कहें)? सम्यग्दर्शन की पर्याय का आत्मा कर्ता नहीं है। सुन तो सही! आहाहा! वो उपचार का कथन है।

एक आया ना परमात्मप्रकाश में, एक प्रश्न आया है कि आप कहते हैं कि बंध का कर्ता नहीं है, वो तो सही है। मगर मोक्ष का कर्ता नहीं है, आप कहते हैं तो मोक्षमार्ग का अभाव हो जायेगा, तो मोक्ष का कर्ता तो कहो, मोक्षमार्ग का कर्ता तो कहो। तो परमात्मप्रकाश में योगींदुदेव ने उत्तर दिया कि सुन! जो मोक्ष का कर्ता बनता है, वह पूर्व भूमिका में भावबंध का कर्ता हो गया। क्योंकि भावकर्म के अभावपूर्वक भावमोक्ष की उत्पत्ति होती है। जो भावमोक्ष का कर्ता बनता है वो भावबंध, मिथ्यात्व का कर्ता हो गया। अकर्ता है आत्मा। कर्ता-फ़र्ता है ही नहीं। कर्ता का नाम व्यवहारनय है, व्यवहारनय झूठा कथन करता है। अकर्ता को कर्ता कहता है, अकर्ता को कर्ता कहता है, अकर्ता को कर्ता कहता है। आत्मा, सबका आत्मा अकर्ता है, ज्ञाता-ज्ञायक है। तो भी व्यवहारनय....आहाहा! कर्ता है, कर्ता है, व्याप्य-व्यापक संबंध है, एक द्रव्य में। वो तो परद्रव्य से जुदा करने के लिए अंदर में आने के लिए कथंचित्, कथंचित् किया है, सर्वथा नहीं किया है। आहाहा! कर्ता कहा है, मालूम है सब। नहीं मालूम है, ऐसा नहीं है। कर्ता सत् कहा है मगर अकर्ता तक पहुँचे नहीं, तहाँ तक कर्ताबुद्धि रह जाती है। क्या कहा? झाँझरी जी! अकर्ता तक नहीं पहुँचे, तहाँ तक कर्ताबुद्धि रहती है, कर्ता का उपचार नहीं आता है। निर्मल पर्याय उत्पन्न हो, तो कर्ता का उपचार आ जाता है, वो उपचार को भी छोड़कर अंदर आ जाता है, शुद्धोपयोग हो जाता

है। परमार्थ प्रतिक्रमण में नियमसार की पाँच गाथा में ऐसा लिखा है ।

जानने का भी संबंध है नहीं। मैं ज्ञाता और ये मेरा ज्ञेय, ऐसी भ्राँति अनादिकाल से चली आ रही है। कलश टीकाकार ने २७१ कलश में कहा कि मैं ज्ञाता और छहद्रव्य मेरा ज्ञेय, ऐसी भ्राँति तो अनादिकाल से चालू (है)। भ्राँति, व्यवहार नहीं लिखा (है)। क्या कहा? भ्राँति। आत्मा को जानने के बाद छहद्रव्य जानने में आवें, तो निश्चयपूर्वक व्यवहार हो सकता है। मगर अपने को छोड़कर छहद्रव्य को जाना, वो भ्राँति है तेरी। जानने में आता है स्व और मानता है (कि) मेरे को पर जानने में आता है, वो बुद्धि भ्रष्ट है। सबको, आबाल-गोपाल सबको, भगवान आत्मा जानने में आ रहा है, समय-समय पर। आहाहा! तो प्रश्न उठता है (कि) तो (फिर) आनंद क्यों नहीं आता है? सम्यग्दर्शन क्यों नहीं आता है? तू कहाँ मानता है? तू तो मानता है कि राग का कर्ता हूँ और पर को जानता हूँ। दो भूल तो पड़ी हैं तेरे में। तीन महीने के कोर्स में फेल (नापास) है, तो दूसरे तीन महीने के कोर्स में पास (उत्तीर्ण) कैसे होवे?

छाबड़ा जी! आहाहा! ये सबके लिए है। छाबड़ा जी के लिए नहीं। हें? एक का तो नाम। एक का तो नाम। जिसका बड़ा दिल होवे ना, उसका नाम (लेते हैं)। नहीं तो, हमारा नाम क्यों लेते हैं? हमारा नाम क्यों लेते हैं? कोमल जी! आहाहा! ऐसे चिड़ (गुस्सा आ) जाए। समझे? मान-कषाय (वाला) जीव है ना? वो उसको सहन नहीं होता है। भाई! वो नाम की बात नहीं है, वो तो काम की बात है। नाम को छोड़ दे तू। अनामी है आत्मा। छाबड़ा नाम कहाँ? आत्मा का नाम छाबड़ा जी है? हें? आत्मा का नाम तो ज्ञायक है। आहाहा!

जानने का भी संबंध है नहीं। मैं ज्ञाता और ये मेरा ज्ञेय, ये तो भ्राँति है। व्यवहार भी नहीं है। निश्चय के बिना व्यवहार होता नहीं है। **ऐसी बात है! समझ में आया** कुछ? मैं ज्ञाता और ये मेरा ज्ञेय, भ्राँति है। समझ में कुछ आया? हाँ! साहब! आ गया। तो क्या आया? मैं ज्ञाता और मैं ही ज्ञेय, ऐसा है? ऐसा कथंचित् है। अरे! (ये) तो सही है, तो आप क्यों कथंचित् कहते हैं? कि मैं ज्ञाता और मैं ही ज्ञेय, आपने सिखाया, तो मैंने बोला, तो भी आप कथंचित् क्यों कहते हो? (वो) भेद का कथन है। अभेद का कथन नहीं है। भेद को छोड़ दे, लक्ष्य। भेद के लक्ष्य से विकल्प की उत्पत्ति (होगी)। अनन्तानुबन्धी विकल्प उत्पन्न होगा। पर को जानता हूँ, ऐसी बुद्धि तो अनन्तानुबन्धी का बाप है। समझे कुछ? आहाहा! भेद तक आया। मैं ज्ञाता और मैं ज्ञेय। अरे! छोड़ दे, भेद। ज्ञाता भी मैं और ज्ञेय भी मैं, ऐसा विकल्प छोड़ दे। तो एकाकार होकर अनुभव, स्वानुभव हो जायेगा।

आहाहा! यहाँ क्या कहते हैं? कि परज्ञेय (परपदार्थ, देव-शास्त्र-गुरु, पंच परमेष्ठी और व्यवहाररत्नत्रय आदि ज्ञेय), मैं ज्ञान और मैं ज्ञाता - ऐसा सम्बन्ध होना तो दूर रहो। अभी अंदर की बात बताते हैं। असद्भूत व्यवहार की बात तो दूर रहो। अभी सद्भूत व्यवहार के अंदर लाते हैं, गुरुदेव। आहाहा!

मैं ज्ञेय, मैं ज्ञान और मैं ही ज्ञाता - ऐसे तीन भेदरूप भी मैं नहीं। मैं भेदरूप नहीं हूँ। ज्ञेय भी अभेद ही होता है, अभेद में भेद करके समझाया जाता है। ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता समझाया जाता है। जैसे ध्येय भी अभेद है गुण से, ऐसे ज्ञेय निर्मल पर्याय से अभिन्न है, अभेद; तो भी भेद करके समझाया जाता है। ध्येय भी अभेद और ज्ञेय भी (अभेद)। ध्येय त्रिकाल अभेद है, ज्ञेय क्षणिक अभेद होता है नया, अनुभव के

काल से। काल में नहीं काल से, निरंतर।

भेदरूप भी मैं नहीं। ये तीनों ही मैं एक हूँ। तीनों मैं एक हूँ। ज्ञान भी मैं, ज्ञेय भी मैं, ज्ञाता भी मैं। भेद की ज़रूरत नहीं। मैं अभेद हूँ। आहाहा! **देखो, यह स्वानुभव की दशा।** क्या कहा? गुरुदेव ने फ़रमाया कि, देखो! यह स्वानुभव की दशा। मैं ज्ञान और वो ज्ञेय, वो तो तेरा अज्ञान है। वो तो असद्भूत व्यवहार में चला गया। अभी अंदर में आओ कि, मैं ज्ञान और मैं ज्ञेय, मैं ज्ञाता, सद्भूत व्यवहार में आया। वर्तुल में आ गया। आहाहा! वो प्रमाण से बाहर गया था, अभी वो प्रमाण में आ गया, मगर प्रमाण में अटकना नहीं। तीन भेद को छोड़ दिया, तो अभेद एकाकार, एक आत्मा के ही तीन नाम हैं। आत्मा एक, नाम इसके तीन हैं। धर्म तीन हैं, धर्मी एक है। धर्म तीन और धर्मी एक है। आहाहा!

देखो, यह स्वानुभव की दशा। गुरुदेव स्वानुभव की दशा की बात करते हैं और ऐसा शब्द भावार्थ में भी है। ये, पंडित जी ने, जयचंद पंडित जी ने भावार्थ लिखा है ना, भावार्थ। देखो! भावार्थ में है। वो भावार्थ ऊपर का प्रवचन चलता है। वो चलता है ना प्रवचन अभी, भावार्थ ऊपर का चलता है कि नहीं? नहीं। अभी देर है। ठीक! अच्छा! अभी आएगा। भावार्थ, बाद में, यहाँ नीचे। बराबर! उसमें, उसमें भी है। मूल में भी है। देखो! ये भाव, अनुभव की दशा। देखो! यह अनुभव की दशा। जैसे अनुभव करके बाहर आये हों और प्रवचन दिया हो, वैसे, ऐसी दशा की बात है। जिसको कर्ताबुद्धि है, उसको आहाहा! (कर्ताबुद्धि) निकालना चाहिए। तीन महीने के कोर्स में तो पास (हो जा)। तीन महीने के कोर्स में पास न हो तो, दूसरे तीन महीने माँग लेना, गुरु के पास से। ये गुरु हैं ना? आहाहा! विद्यार्थी का।

मैं ज्ञाता हूँ, कर्ता नहीं हूँ। ये दस दफ़े, खानगी (अकेले) में, दस दफ़े, जैसे णमोकार मंत्र बोलते हैं ना? चलते-फिरते, सोते-बैठते णमोकारमंत्र। ये भेदज्ञान का मंत्र है। मैं ज्ञाता हूँ और कर्ता नहीं हूँ। (ये) एक। दूसरा, जाननेवाला हूँ, वास्तव में (खरेखर) जाननेवाला ही जानने में आता है; वास्तव में (खरेखर) पर जानने में नहीं आता। ऐसे स्टीकर निकाले हैं, स्टीकर। स्टीकर क्या? स्टीकर। हाँ! उसमें लिखा है।

देखो, ये अनुभव की दशा। ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय ऐसे भेद से भेदरूप नहीं होता। भेद करने से भी, भेद कल्पना करने से, वो आत्मा के तीन टुकड़े नहीं होते हैं। ज्ञेय इधर गया, ज्ञान इधर गया, ज्ञाता इधर रहा। तीन टुकड़े होते नहीं हैं। भेद कल्पना से समझाया जाता है, है तो अभेद वस्तु। ध्येय भी अभेद और ज्ञेय भी अभेद। इतनी बात है कि ये ज्ञेय है, ये अनुभव के काल में नया अभेद (उत्पन्न) होता है। एक पुराना (जूना) अभेद और एक नया अभेद। निर्मल पर्याय से, सम्यग्दर्शन से अभिन्न। आहाहा! सर्वथा भिन्न नहीं है निर्मल पर्याय। द्रष्टि अपेक्षा से सर्वथा भिन्न और ज्ञान अपेक्षा से कथंचित् भिन्न-अभिन्न है। आहाहा!

भेद से भेदरूप नहीं होता-ऐसा अभेद चिन्मात्र मैं आत्मा हूँ। अभेद चिन्मात्र आत्मा, वो ही मैं हूँ। मैं रागी हूँ और मैं मनुष्य हूँ, स्त्री हूँ और वो तो अज्ञान के घर में गया, वो तो अज्ञान का घर में गया। वस्तु का स्वभाव में ऐसी बात है नहीं।

मैं ज्ञेय हूँ, मैं ज्ञान हूँ, मैं ज्ञाता हूँ - ऐसे तीन भेद उत्पन्न होते हैं, वह तो राग-विकल्प है। एक के अंदर तीन भेद का विकल्प करना, वो तो राग है। भैया! आहाहा! इसमें अनुभव नहीं होता है, वीतरागता नहीं आती है, मध्यस्थ नहीं होता है। उसमें पक्ष आ जाता है, भेद का। आहाहा! क्या कहा? लुहाड़िया जी! लुहाड़िया जी को कठिन पड़ गया। पड़े ही ना कठिन? क्योंकि चौबीसों ही घंटा, उपयोग

का दुरुपयोग करते हैं। हम देखते हैं, करते ही हैं। आहाहा! उपयोग के दुरुपयोग का अर्थ क्या? कि इन्द्रियज्ञान। कनवर्ट कर दिया उपयोग को, इन्द्रियज्ञान में कनवर्ट किया। अभी उपयोग का सदुपयोग करो, कनवर्ट करो, तो अतिन्द्रियज्ञान में आत्मा अनुभव में आ जायेगा। आहाहा! इन्द्रियज्ञान में आत्मा का अनुभव नहीं होता है। अनुमान होता है, मन के द्वारा निर्णय होता है। अनुभव नहीं होता है। मन से निर्णय होता है। निर्णय भी यथार्थ तक हो जाता है। बाद में अनुभव होता है।

ऐसे तीन भेद उत्पन्न होते हैं, वह तो राग-विकल्प है परंतु वस्तु और वस्तु की द्रष्टि में ऐसे भेद हैं ही नहीं। ज्ञाता-ज्ञान और ज्ञेय, ऐसे भेद है ही नहीं। भेद का निषेध करते हैं, वो भिन्न... और अभेद का भेद, भिन्न का निषेध किया और अभेद के भेद का निषेध करके, अभेद में, चिन्मात्र मैं हूँ, चिन्मात्र मैं हूँ, वो भी विकल्प है, मगर वो अनुभव की दशा की वो भाषा है। क्या करें? भाषा में तो ऐसा ही आवे ना। आहाहा! अनुभव तो कोई! अनुभव की चीज़ है, शब्द में (वो) आती नहीं है। तो भी भाषा द्वारा बताते हैं।

आहाहा! **सब अभेद एक है। वस्तु की द्रष्टि में ऐसे भेद हैं नहीं तीन भेद, सब अभेद एक ही है। भाई! तुझमें तेरा अस्तित्व कितना है**, भाई! करुणा करके ज्ञानी समझाते हैं, भाई! भैया! भाई! हिंदी में भैया! आहाहा! **तुझमें तेरा** होनापना **अस्तित्व** कैसा **है**, तेरे में क्या है चीज़, वो तू जानता नहीं है। तू कौन है और तेरे में क्या है, वो तू जानता नहीं है। सर्वज्ञ ने जान लिया, संतों ने अनुभव कर लिया, अनुभव करके लिखते हैं कि तेरी वस्तु कैसी है, तेरे में क्या-क्या है, बताते हैं ज्ञानी।

भाई! तुझमें तेरा होनापना **अस्तित्व कैसा है, उसका तुझे पता नहीं।** आहाहा! खबर है, मेरे में राग होता है, दुःख मेरे में होता है, मैं राग को करता हूँ, मैं दुःख को भोगता हूँ, मैं स्वर्ग में जाऊँगा। आहाहा! स्वर्ग में जाऊँगा (तो बोले), (लेकिन) नरक में जाऊँगा, ऐसा बोले नहीं। कहाँ से बोले? आहाहा! क्योंकि पुण्य के फल की रूचिवाले को स्वर्ग अच्छा लगता है। पुण्य की रूचिवाले को स्वर्ग में सुख लगता है। तो स्वर्ग में सुख है वहाँ? आहाहा! कि आत्मा में है?

भाई! तुझमें तेरा होनापना **अस्तित्व कैसा है उसका तुझे पता नहीं। तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्यायें त्रिकालवर्ती जो अनंतानंत हैं, उन सबको जाननेवाली तेरी ज्ञान की दशा, वह वास्तव में तेरा ज्ञेय है।** जो लोकालोक तेरे ज्ञान में झलकता है, ऐसी ज्ञान की पर्याय तेरा ज्ञेय है। यानि लोकालोक ज्ञेय नहीं है। आहाहा! लोकालोक के ज्ञेय का निषेध करने के लिए, लोकालोक इसमें झलकते है, ऐसी ज्ञान की पर्याय तेरा ज्ञेय है (ऐसा कहा)। वहाँ फुलस्टॉप नहीं है। ध्यान रखना ज़रा! शांति से। आहाहा! **तेरा ज्ञेय है। वह दशा अकेली नहीं, परंतु तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय, वह सब ज्ञेय हैं । भेद हो गया**, वहाँ से लक्ष्य छूट गया, अंदर में आ गया तो अभेद हो गया।

आहाहा! उन समस्त का (स्वयं का) ज्ञान वह ज्ञान; वह समस्त (स्वयं) ज्ञेय और स्वयं ज्ञाता-ये तीनों ही वस्तु एक की एक है, स्वयं का ज्ञान, पर का ज्ञान निकाल दिया। देखो भैया! ऐसा है, राग, सम्यग्दृष्टि को राग, अस्थिरता का आता है। पाँच महाव्रत, देशव्रत लेने (का), देव-शास्त्र-गुरु का राग, शुभराग आता है। तो राग के समय में, उसके ज्ञान में राग का तो प्रतिभास होता है, मगर राग जानने में नहीं आता है। राग का ज्ञान नहीं है और राग से ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो ज्ञान से हुआ, मगर राग का जब प्रतिभास होता है, तब राग जानने में नहीं आता है, ज्ञान जानने में आता है। और ज्ञान कैसे जानने में आता

है? कि राग का जिसमें अभाव है, ज्ञान में राग का अभाव है, ऐसा ज्ञान जानने में आता है, उसका नाम आत्मज्ञान है, उसका नाम आत्मज्ञान है। राग जानने में आता है, वो व्यवहार है। निश्चय से तो अपना ज्ञान ही जानने में आता है, जो ज्ञान की पर्याय में राग का अभाव है। उपादान में निमित्त का अभाव है। निमित्त जानने में नहीं आता है, नैमित्तिक जानने में नहीं आता है, उपादान जानने में आता है, क्षणिक-शुद्ध-उपादान। क्षणिक-शुद्ध-उपादान जानने में आता है, तो त्रिकाली उपादान जानने में आ जाता है।

निमित्त जानने में आता है, तो उपादान तक नहीं पहुँचता है। नैमित्तिक जानने में आता है? रतनलालजी 'हाँ' बोलते हैं। भारिल्ल जी! 'हाँ' ही बोलें ना। आहाहा! ज्ञेय जानने में नहीं आता है, ज्ञेय के सम्बन्धवाले जो ज्ञान की, ज्ञेयाकार ज्ञान की पर्याय, नैमित्तिक...वो निमित्त, वो नैमित्तिक। है शुद्ध। वो राग की नैमित्तिक की बात तो गयी। राग के निमित्त की बात तो गई, अभी। अभी तो वो पहले तीन महीने के कोर्स में चली गयी। अब तो दूसरे तीन महीने का कोर्स चलता है। तो ये जो ज्ञेय है, वो निमित्त है। वो जानने में नहीं आता है। अच्छा! ज्ञेय सम्बन्धी की जो ज्ञान पर्याय हो, वो नैमित्तिक हुई। ज्ञेय सापेक्ष ज्ञान की पर्याय का नाम ज्ञेयाकार कहो या तो नैमित्तिक कहो, वो भी जानने में आती नहीं है। तो क्या आता है? निमित्त नहीं आता है, नैमित्तिक नहीं आता है, तो क्या जानने में आता है? कि ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। अर्थात् शुद्ध-उपादान जानने में आता है, क्षणिक-शुद्ध-उपादान।

उपादान का दो भेद है। त्रिकाली-उपादान और एक क्षणिक-उपादान। तो उपादान जो जानने में आया, निमित्त नहीं, नैमित्तिक नहीं, उपादान जानने में आया। आहाहा! सूक्ष्म बात है! झांझरी जी ज़रा! आहाहा! तो वो वहाँ तक आया ना? ओहोहो! ज्ञान की पर्याय जानने में आती है, क्षणिक-उपादान जानने में आता है, तो क्षणिक-उपादान, त्रिकाली-उपादान कथंचित् अभिन्न है, तो त्रिकाली-उपादान जानने में आ जाता है। निमित्त से हट गया, नैमित्तिक से हट गया, स्वभाव में आ गया, तो (त्रिकाल) स्वभाव में आ गया। स्वभाव में आ गया तो त्रिकालस्वभाव में आ गया, ऐसी बात है। आहाहा! निमित्त का लक्ष्य छूटे बिना उपादान लक्ष्य (में) आता नहीं है। नैमित्तिक का लक्ष्य कहो कि निमित्त का लक्ष्य, एक ही बात है।

मुमुक्षुः- एक बार और लो।

उत्तरः- अच्छा! एक बार और। ठीक है! इसमें कोई दोष नहीं है। ये तो भावना की, भावना की बात है ना? आत्मा की भावना में कोई दोष बार-बार लगावे....क्या था? हें? हाँ! पुनःरोक्ति दोष नहीं होता है। फिर से भावना करनी, आत्मा की।

फिर से, क्या कहा? कि राग है ना, निमित्त है। राग क्या है? ज्ञेय है, निमित्त है। अंदर की बात लो अभी बाहर की कहीं ज्यादा नहीं (लेना)। राग है ना, वो उपादान नहीं है। अरे! उपादान नहीं है, उपादान नहीं है? आहाहा! तेरे को उपादान का मालूम नहीं है। तेरे में क्या है, तेरे को खबर पड़ती नहीं, ऐसा कहते हैं! राग निमित्त है, उपादान नहीं (है, ऐसा लगता है)। आहाहा! वो जो राग जानने में आया, स्वच्छ ज्ञान में, तो वो राग जानने में आया कि राग निमित्त है, ऐसी नैमित्तिक ज्ञान की पर्याय जानने में आई? तो निमित्त से हट जा एक दफ़े। राग नहीं जानने में आता है। राग जिसमें जानने में आता है, ऐसी नैमित्तिक, वो निमित्त, तो निमित्त सापेक्ष ज्ञान की पर्याय का नाम नैमित्तिक, (वो) जानने में आती है। वहाँ से हट जा, वहाँ से हट जा, निमित्त से हट जा, नैमित्तिक से हट जा, उपादान में आ जा।

आहाहा! क्षणिक-उपादान, निर्मल पर्याय जानने में आती है। ज्ञान जानने में आता है। वो ज्ञान तो आत्मा का है, राग का नहीं है। नैमित्तिक नहीं है, वो तो स्वाभाविक है, वो ज्ञान तो स्वाभाविक है। ज्ञान जानने में आता है, तो क्षणिक-उपादान जो जानने में आया, तो उपादान जान लिया उसने, क्योंकि कथंचित् अभिन्न है। कथंचित् निर्मल पर्याय और आत्मा कथंचित् अभिन्न है। राग जैसे सर्वथा भिन्न है, ऐसे निर्मल पर्याय (भी) सर्वथा भिन्न (नहीं है)। द्रष्टि अपेक्षा से सर्वथा भिन्न, परद्रव्य कहा जाता है, मगर अनुभूति के काल में ज्ञान-प्रधान कथन में कथंचित् अभिन्न है।

ज्ञान में तो सर्वथा भिन्न लगा दो, तो अन्यमत हो जाता है, साँख्यमत हो जाता है, ऐसा है नहीं। द्रष्टि अपेक्षा से (सर्वथा) भिन्न कहा, तो ज्ञान की अपेक्षा से सर्वथा भिन्न मान लो, तो-तो अन्यमत हो गया। साँख्यमत। अनुभव ही नहीं होगा किसी को। आहाहा! ऐसा नहीं है।

समझ में आया अभी? सुमतिलाल! आहाहा! वो भिंडवाला है। मगर बाहर घूमता है उपयोग, वो, उसका। सबके हित के लिए है, नाम तो एक का, बाकी सबका। आहाहा! मौका है। ये बाहर बात आ गयी, गुरुदेव के प्रताप से। अलौकिक बात बाहर आ गई। भगवान महावीर ने कही, गौतम गणधर ने जो कही, वही बात, वो बात समयसार में आ गयी। आहाहा! कुंदकुंद भगवान आठ दिन गये थे, रहे थे। आहाहा! बहुत जीवों की आँखों से देखी (हुई) बात है, एक जीव से ज़्यादा जीवों की देखी हुई बात (है)। आहाहा! मानो, कि न मानो। आहाहा! वहाँ के जीव इधर आये हैं, बहुत, महाविदेहक्षेत्र से। उन्होंने देखा है वहाँ, ऐसी बात है। क्या करें? कोई प्रूफ तो है नहीं उसका। श्रद्धा का विषय है, भैया! झूठ बोलने की बात तो है नहीं, इस गद्दी पर बैठकर। आहाहा!

ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय तीनों भावसहित वस्तुमात्र, आहाहा! **उन समस्त का (स्वयं का) ज्ञान वह ज्ञान; वह समस्त (स्वयं) ज्ञेय और स्वयं ज्ञाता - ये तीनों वस्तु एक ही हैं**, अभेद हैं। द्रव्य-गुण और पर्याय आत्मा है। पर्याय परद्रव्य नहीं है। पर्याय, पुद्गल का परिणाम नहीं है। जीव का परिणाम नहीं है, जीव है। संवर-निर्जरा जीव का परिणाम नहीं है, जीव है। अभेदनय से वो जीव है। आहाहा! अभेद की बात है ना? ज्ञेय के अभेद की बात चलती है। ध्येयपूर्वक ज्ञेय होता है। ज्ञेय में ध्येय छुपा हुआ है। ध्येय का नाश करके ज्ञेय नहीं होता है। ध्येय तो ज़िंदा रहता है, तीनोंकाल। आहाहा! ध्येय के आश्रय से ध्यान होता है, तो आत्मा ध्याता बन जाता है। ऐसा आया है ना, दौलतरामजी के अंदर? नहीं आया? ध्याता-ध्यान-ध्येय, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय। बोलो! कोई बोलो।

स्वरूपाचरणचारित्र (शुद्धोपयोग) का वर्णन (ढाल ६)

जहँ ध्यान-ध्याता-ध्येयको न विकल्प, वच भेद न जहाँ ।
चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ ॥

आहाहा! अभेद है।

तीनों अभिन्न अखिन्न शुध-उपयोगकी निश्चल दशा ।

हाँ! शुद्धोपयोग की निश्चलदशा है।

प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा ॥९॥

एक, एक है, एकम् है। द्रव्य-गुण-पर्याय एकम् है। आहाहा! वो अनेकांत का एकम् है और त्रिकाली द्रव्य, जो ध्रुव है, उपादेय, वो सम्यक्एकांत का एकम् है। दो एक हैं। मगर दो नहीं हैं, एक है, बस। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। कौनसा ज्ञायक? ध्येयरूप ज्ञायक कि ज्ञेयरूप (ज्ञायक)? वो मैं नहीं जानता हूँ। मैं तो ज्ञायक हूँ, मैं तो ज्ञायक हूँ। दो आ गया, उसमें। आहाहा! वो जैनमत विशाल है, बहुत विशाल है। आहाहा! जैनदर्शन परिपूर्ण दर्शन है। आहाहा! सर्वज्ञ का मत, एक समय में केवलज्ञान में प्रत्यक्ष स्व और पर को जानता है; वाणी में, दिव्यध्वनि में आ गया है, गौतम गणधर ने झेल लिया। आहाहा! कुंदकुंद भगवान वहाँ गये, आठ दिन रहे। आहाहा! वहाँ आहारदान भी उनका हुआ था। सब बात बहुत है, अंदर में। क्या कहें?

आहाहा! बहुत सरस भावार्थ है।